कर्बला की पाठशाला

लेखक (उर्दू) : जनाब सय्यद इब्ने हुसैन नक़वी/ अनुवादक : जनाब सय्यद जाफ़र असर नक़वी

हमारे सम्मुख है मुहम्मद स0 साहब के जीवन का वह काल जबकि आप को एक दो दिन नहीं, वर्ष दो वर्ष नहीं अपितु तेरह सौ साल तक जिन विषभ परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, जो भेंट चढ़ानी पड़ी उसके लिए आपके मुख से निकले हुए शब्द पर्याप्त है कि जो कष्ट और अपत्ति मुझ पर पड़ी वह किसी अन्य नबी पर नहीं पड़ी। यह मक्के का जीवन था, इसके पश्चात् निरन्तर दस वर्ष तक मदीने में शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षा करते व्यतीत हो गये, कभी 'बद्र' का रणक्षेत्र है तो कभी 'ओहद' का युद्धस्थल, कभी 'खन्दक' का युद्ध है तो कभी ख़ैबर का जिहाद, और इनमें के प्रत्येक जिहाद में मुहम्मद साहब ने केवल इष्ट मित्र वरन् अपने परिवार के श्रेष्ठ व्यक्तियों की बलि चढ़ाते रहे।

तेईस वर्ष के निरन्तर परिश्रम, कठिनाइयों एंव बलिदान के पश्चात मुहम्मद साहब ने अनपढ़ अरबवासियों के मस्तिष्क में जो परिवर्तन उत्पन्न किये और जिस प्रकार अल्लाह के आदेशों का प्रसार किया था, आपकी मृत्यु के पश्चात ही उन शिक्षाओं को मुसलमानों के बहुदल ने पीठ पीछे डाल संसार की ओर अपना मुख मोड़ लिया।

अपने विशेष अधिकार का प्रदर्शन हज़रत अली अ0 ने इसी लिए तो बारम्बार किया था कि अभी अवसर है कि मुसलमानों की शुद्धि की जा सके और उनको इस्लाम के पूर्व की दशा पर न पलटने दिया जाय। परन्तु जब मुसलमानों ने ध्यान न दिया तो आप पृथक हो गये और मौनता के साथ अपने उन कर्तव्यों के पालन में लीन हो गये जिनकी वे अल्लाह की ओर से उत्तराधिकारी थे, 25 वर्ष का लम्बा समय इसी प्रकार वयतीत हो गया इसके पश्चात वह समय आया जब मुसलमानों ने स्वयं उन्हें अपना ख़लीफ़ा बनाने की अभिलाषा प्रकट की।

यह घटना विचारनीय है कि अब से 25 वर्ष पूर्व हज़रत अली अ0 बारम्बार अपने अधिकारों को प्रकट कर रहे थे और कोई न सुनता था अब वही लोग अनुरोध कर रहे हैं कि आप हमारा नेतृत्व स्वीकार करें और आप बराबर इनकार कर रहे हैं। यह क्या था? प्रत्यक्ष है कि इन 25 वर्षों के मध्य मुसलमानों की प्रकृति इतनी बिगड़ चुकी थी कि अब उसमें किसी प्रकार का संशोधन होना कठिन दिखाई दे रह था।

जब उनका अनुरोध अधिक बढ़ गया तो हज़रत अली अ0 ने विवश होकर इस ज़िम्मेदारी को स्वीकार तो कर लिया, परन्तु यह कह दिया कि मैं तुमको उन्हीं शिक्षाओं पर चलाऊंगा जो मुहम्मद स0 साहब ने दी थी। उस समय तो सब ने स्वीकार कर लिया, परन्तु संसार को ज्ञात है कि कि जिस प्रकार मुहम्मद स0 साहब के जीवन में आप 23 वर्ष तक इस्लाम तथा क़ुर्आन के लिए जिहाद करते रहे उसी प्रकार आप को अपने जीवन के इस काल में भी 5 वर्ष तक क़ुर्आन के वास्तविक उपदेशों के प्रसार में जिहाद करते व्यतीत हुए।, कभी 'जमल' का रणक्षेत्र था, कभी 'सिफ्फीन' का घंघोर युद्ध और इसी क्रम में इस्लाम के शत्रुओं के विद्रोह का मुक़ाबिला और परिणाम में विषमय तलवार से अल्लाह के सजदे में शहादत (अमरत्व)।

हज़रत अली अ0 की शहादत के पश्चात अब उनके सुपुत्र इमाम हसन अ0 पर ईश्वर की ओर से उसके उपदेशों की सुरक्षा का भार आ पड़ा। आपने अपने नाना तथा पिता के रक्त से सींचे गये इस्लाम के वृक्ष की सिंचाई आरम्भ की। परन्तु अब परिस्थिति ऐसी हो गई थी कि सीरिया शाम देश सम्पूर्ण रूप से बनी उमय्या के आधीन आ चुका था और मुक़ाबला उससे था जो उनके पिता से निरन्तर छः मास तक युद्ध करके धोखा देकर और चतुराई के द्वारा सफलता प्राप्त कर चुका था। मुसलमानों की गाढ़ी कमाई से एकत्र किए हुए कोष के द्वार खोल कर बड़े बड़े व्यक्तियों को खरीद लिया गया था और आम मुसलमान इस्लाम की शिक्षाओं को भुला चुके थे।

हज़रत इमाम हसन अ0 ने जब यह देखा कि

अब इनका संशोधन अधिक रक्तपात के पश्चाात भी सम्भव नहीं तो आपने एक ऐसे सन्धि पत्र के द्वारा जिससे इस्लाम धर्म की सम्पूर्ण सुरक्षा हो सकती थी, मुसलमानों के वाध्य तेतृत्व से अलग होकर मौनता पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। परन्तु इतिहास साक्षी है कि सीरिया नरेश को उनका मौन एंव शान्त जीवन भी प्रिय न लगा और उनको विष दिलाकर उनके जीवन के दीपक को बुझा दिया और शहादत के समाचार सुनकर 'अल्लाहो अकबर' का नारा मारा।

इमाम हसन अ0 ने सन्धि पत्र में मुख्य शर्त रखी थी कि सीरिया नरेश को अपने पश्चात किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार न होगा वरन् मुसलमानों के नेतृत्व का सौभाग्य बनी हाशिम को ही प्राप्त होगा। सीरिया नरेश ने जिस प्रकार इस सन्धि पत्र की किसी धारा का पालन न किया उसी प्रकार इस शर्त को भी ठुकरा दिया, और अपने जीवन में अपने धन और सांसारिक शक्ति के बल पर मुसलमानों को ख़रीद लिया और अपने दुराचार, मानवशत्रु और धर्मावलम्बी कुपुत्र यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित करके मुसलमानों से बैअत (अपने आधीन करना) प्राप्त कर ली।

अब ऐसा समय आ गया था कि इस्लाम सहायता के लिए पुकार रहा था और ईश्वर की ओर से उसकी सुरक्षा का भार इमाम हुसैन अ0 पर आ चुका था। सन् 60 में इधर सीरिया नरेश का देहान्त हुआ उधर यज़ीद ने खिलाफत के सिंहासन पर बैठते ही मदीना के गवर्नर को यह आदेश भेजा कि ''हुसैन से मेरी बैअत'' लो और न मानें तो उनका सिर काट कर मेरे पास दमिश्क़ भेज दो।

मुहम्मद मुस्तफ़ा स0 की गोदी का पाला हुआ उनका पुत्र, अली अ0 तथा फातिमा स0 के हृदय का टुकड़ा हसन–ए–मुजतबा का छोटा भाई तथा ईश्वर की ओर से इस्लाम की रक्षा पर नियुक्त किया हुआ हुसैन अ0 और उसके समक्ष यज़ीद की 'बैअत' का प्रश्न? यह वह परिवर्तन है जो मुहम्मद साहब के देहान्त के बाद केवल पचास वर्ष के भीतर इस्लामी जगत में हुआ।

अब हुसैन हैं और यज़ीद एंव यज़ीदित्व के इस चैलेंज का मुक़ाबिला

इतिहास के पृष्ठ साक्षी हैं कि हुसैन ने असत्य के इस चैलेंज को स्वीकार करके इसका उत्तर किस प्रकार दिया। इस्लाम के प्रारम्भिक आदेशों की सुरक्षा के नियमों को दुष्टि में रखते हुए, नाना का रौज़ा, माता की कब्र तथा भाई के मज़ार को छोड़ा और मदीने से 'देश निकाला' पाकर मक्के की पवित्र भूमि पर पदार्पण किया।

संसार का गुण ही दुख है। यहां की परिस्थिति सदैव समान नहीं रहती। एक समय था जब नाना का मक्के से देश निकाला दिया गया तो आपने मदीने में शरण ली, परन्तु नाती को मदीने की धरती पर रहने न दिया गया, वह असत्य के सहयोग से स्वयं को सुरक्षित रखने के हेतु मक्के में शरण लेना चाहता था। यह वह पवित्र धरती है जहां इस्लाम धर्म की शिक्षाओं के अनुसार किसी पशु तक को दुख पंहुचाना 'जायज़' (उचित) नहीं है। परन्तु रसूल के पुत्र का इसी धरती पर वध करने के लिए सीरिया के पशु रूपी सिपाही हाजियों के वेश में भेज दिये गये और हुसैन अ0 को ईश्वर मन्दिर (खाना–ए–काबा) के आदर को सुरक्षित रखने के हेतु हज किये बिना ही वहां से लौटना पड़ा।

अब हुसैन अ0 कहां जायें? कुफ़ा के निवासी निरन्तर पत्र भेज भेजकर यह अनुरोध कर रहे थे, कि आप हमारी हिदायत (पथ प्रदर्शन) के लिए कुफ़ा आइए। आप अपने भाई हज़रत मुस्लिम आत्मज अक़ील को वहां की परिस्थिति ज्ञात करने के लिए भेज चुके थे और उन्होंने लिखा था कि आप यहां आइये, ये सब आपकी शिक्षाओं और आदेशों का पालन करने को तैयार हैं। हुसैन अ0 उसी ओर मुड़ गये और अब यात्रा में विपत्तियों का समावेश होता गया। रसूल स0 के परिवार की आदरणीय स्त्रियां और छोटे छोटे बालकों का साथ, अरब का जलता हुआ मरूस्थल, दूर तक जल का पता नहीं परन्तु बलिदान स्थान तक पहुचने के लिए कठिन से कठिन मार्ग से होते हुए चले जा रहे हैं।

इधर कूफ़े में इब्ने ज़ियाद के राज्य के स्थापन के पश्चात ऐसा परिवर्तन होता है कि हुसैन अ0 के दूत मुस्लिम का वध कर डाला जाता है। उधर 'हुर' की सेना इमाम हुसैन अ0 का घेराव करती है कि उनको कुफे ले जा कर यज़ीद के सामने उपस्थित कर दे। रसूल के सुपुत्र ने इनकार कर दिया और कर्बला की ओर चले। हुर साथ–साथ है। आपने फ़ुरात नदी के तट पर अपने शिविर लगवाये शत्रु की सेना ने प्रतिरोध किया, युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न हो गई

परन्तु समस्त संसार के लिए हितकारी बन कर आने वाले रसूल के नाती ने नदी के तट से अपने शिविर हटवा कर मरूस्थल में लगवा दिये। और इस अवसर पर भी युद्ध को प्रिय न किया।

यह सेना वही तो थी जिसे अभी कुछ दिन पूर्व हुसैन ने अपने साथ का पानी पिला दिया था। इस परिस्थिति में कि उस सेना के एक हज़ार व्यक्ति तृष्णा से व्याकुल थे और उनके मुख से उनकी जिहवा बाहर निकल आयी थी। इमाम हुसैन ने परिणाम की चिन्ता किये बिना अपने साथ का समस्त जल उनको पिला दिया था। क्या संसार मानव पर दया का इस से उच्चतर कोई आदर्श प्रस्तुत कर सकता है?

यदि हुसैन उस जल को सुरक्षित रखते तो एक ओर शत्रु की सेना के एक हज़ार व्यक्ति युद्ध किये बिना ही समाप्त हो जाते और दूसरी ओर जल का वह कोष इतना अधिक था कि वह महीनों इमाम हुसैन अ० और उनके साथियों के काम आता और शत्रु ने घाट रोकने की जो योजना बनाई थी वह सफल न हो पाती। परन्तु यह कार्य वह व्यक्ति कर सकता था जिसके समक्ष सांसारिक विजय होती। वे हुसैन थे जो सांसारिक मायाजाल में फंसे हुए व्यक्तियों से युद्ध करने और प्रभुत्व की विजय के हेतु रणक्षेत्र में आये थे। उनको प्रत्येक स्थान पर वास्तविक इस्लाम की शिक्षाओं को संसार के समक्ष प्रस्तुत करना था। उन से यह कहां सम्भव था कि मनुष्य तो मनुष्य किसी जीव तक को भी कष्ट देना सहन कर सकें।

इतिहास साक्षी है कि शत्रु की सेना के प्रत्येक सैनिक को पानी पिलाने के साथ साथ प्रत्येक घोड़े के सामने भी कई कई बार जल लाया जाता था और जब तक वह सन्तुष्ट होकर मुख न हटा लें उसके आगे से जल हटाया न जाता था। क्या कहना हुसैन के इस उच्च चरित्र का कि शिविर नदी के तट से हटा दिये और अपनी इस महान कृतज्ञता का वर्णन तक न किया।

इस्लाम युद्ध का विरोधी है, वह संसार में शान्ति का सन्देश लेकर आया था। वह विश्व शान्ति का अग्रदूत था। पैग़म्बर–ए–इस्लाम और उनके कुटुम्बी जो उनके वास्तविक पदाधिकारी (उत्तराधिकारी) थे उनके सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करने के पश्चात भी, संसार एक भी ऐसा उदाहरण नहीं प्रस्तुत कर सकता इन महापुरूषों ने किसी पर प्रहार अथवा आक्रमण किया हो। इतिहास इस बात का भी साक्षी है कि जो युद्ध इस्लाम से हुआ वह मदीना के निकटवर्ती क्षेत्रों में हुआ, यदि मुहम्मद साहब आक्रमण करते तो रणक्षेत्र मक्का के निकट होता न कि मदीना के। जब उन पर आक्रमण किया गया तो उनको प्रतिरक्षा पर विविश होना पड़ा।

इस्लाम केवल उन शिक्षाओं का उत्तराधिकारी है जिसे उसने संसार के समक्ष प्रस्तुत किया था वह उन विजेताओं की कार्यवाहियों का उत्तराधिकारी नहीं जिन्होंने देशों पर विजय प्राप्त करने के हेतु दूसरों पर आक्रमण किया और इस्लाम को बदनाम किया। वे उनके निजी कर्म थे जिस के उत्तराधिकारी (उत्तरदायी) वे स्वयं थे न कि इस्लाम।

इस्लाम देशों पर विजय प्राप्त करने नहीं आया था, वह तो संसार वासियों के हृदय को जीतने आया था। जो ईश्वर की ओर से वास्तविक इस्लाम के रक्षक थे, उन्होंने ईश्वर की शिक्षाओं का प्रचार जिस प्रकार किया वह इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित है और बुद्धि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह निमंत्रण देता है कि वे वास्तविक इस्लाम का अध्ययन उनके आचरण तथा चरित्र के दर्पण में करे।

इस्लाम संस्थापक के पश्चात हज़रत अली अ0 ने भी यथासम्भव चेष्टा की कि युद्ध न करना पड़े, परन्तु जब बसरा तथा सीरिया की ओर से आक्रमण हुआ तो विवशतः उनको प्रतिरक्षा के लिए लड़ना पड़ा। इमाम हसन अ0 ने तो सांसारिक राज्य ही को ठोकर मार दी।

इमाम हुसैन अ० के सामने उनके नाना, पिता तथा बड़े भाई के जीवनादर्श थे। वे भी एकान्तमय जीवन व्यतीत कर रहे थे परन्तु उनको विवश किया गया कि या तो वे यज़ीद की 'बैअत' करें अन्यथा मरने पर तैय्यार हो जायें। हुसैन अ० के लिए मरना सरल था परन्तु अधर्म के आगे सीस झुकाना सम्भव न था इसलिए कि यज़ीद केवल हुसैन अ० ही को 'बैअत' पर विवश नहीं कर रहा था वरन वास्तव में यह प्रश्न पैगम्बरे इस्लाम से था, हज़रत अली अ० से था। इमाम अपितु स्वयं ईश्वर से था।

यज़ीद, हुसैन अ० के उच्चतर पद से अवश्य परिचित था, और इसी आधार पर उनसे बैअत चाहता था, नहीं तो उसके राज्य की सीमाओं में सैकड़ों नहीं सहस्त्रों वयक्ति ऐसे पड़े होंगे जिनको बैअत पर

विवश न किया गया होगा। परन्तु यज़ीद हुसैन अ० को केवल जानता था पहचानता न था। उसको यह अनुभव ही न था कि हुसैन युग के लौह पुरूष हैं। वह संसार का कुत्ता यह नहीं समझ सकता था कि ईश्वर जिन व्यक्तियों को अपने आदेशों के प्रसार और सुरक्षा के लिए चुनता है, वे वही होते हैं जो इसके योग्य होते हैं वे मनुष्यों द्वारा निर्वाचित तथा सांसारिक वैभव एंव शक्ति से प्राप्त किए हुए राज्यों के राजा हो सकते हैं जो अवसर को पहचान कर पालिसी अथवा डिप्लोमेसी से कार्य करते हैं। ईश्वर का नियुक्त किया हुआ पथ प्रदर्शक केवल ऐश्वरीय आदेशों का पालन करता है। वह कैसी ही कठिन से कठिन परिस्थिति क्यों न हो ऐश्वरीय शिक्षाओं का उल्लंघन नहीं करता।

2 मुहर्रम सन् 61 हि0 को हुसैन ने कर्बला की धरती पर पदार्पण किया और कर्बला की पाठशाला की शिक्षाओं का क्रम आरम्भ हो गया। कर्बला की रणभूमि शत्रु की सेनाओं के क्रमानुसार आगमन से छलकने लगी। हुसैन अ० का चारों ओर से घेराव कर लिया गया, परन्तु आप तथा आप के साथियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आप अब भी उन परिस्थितियों की खोज में हैं कि आप के उद्देश्य की सुरक्षा के साथ साथ कठिनाइयों से समझौता हो जाये और युद्ध न करना पड़े। आप के कार्य का ढंग इतना सुलझाा हुआ था कि शत्रु की सेना का सेना पति उमर–ए–साद भी यह स्वीकार कर रहा था कि हुसैन अ० सन्धि चाहते हैं। उसने कूफ़े के गवर्नर इब्ने ज़ियाद को इस प्रकार का पत्र भी लिखा परन्तु वह राज्य के गर्व और नशे में लीन था, वह हुसैन अ० को पहचानता ही न था कि उन में कितनी सहनशीलता विद्यमान है और वे अपने उद्देश्य की रक्षा के लिए कैसी कैसी कठिनाइयों का मुक़ाबला कर सकते हैं। वह हुसैन अ० की सन्धिप्रियता को उनकी क्षीणता समझ बैठा और उत्तर दिया बस उनका 'बध' अथवा 'बैअत'।

मुहम्मद अ० साहब तथा उनके वास्तविक पदाधिकारियों (उत्तराधिकारियों) ने अधर्म तथा असत्य की 'बैअत' न स्वीकार करने का जो प्रण किया था वह प्रत्यक्ष रूप से संसार के समक्ष था। स्वयं शत्रु की सेना के सेना पति 'उमर–ए–सअद' ने इब्ने ज़ियाद का पत्र पढ़कर कह दिया था कि ईश्वर की सौगन्ध हुसैन अ० 'बैअत' नहीं करेंगे उनके वक्ष में उनके पिता का हृदय है और इस प्रकार शत्रु अपने मुख से सत्य धर्म को स्वीकार कर रहा था। अब संसारवासी विचार कर सकते हैं कि जिसके नाना तथा पिता ने अधर्म का साथ देने से इनकार कर दिया हो, उसका सुपुत्र अधर्म के आगे किस प्रकार शीश झुका सकता है। यह एक निश्चित उद्देश्य था और ईश्वर की ओर से हुसैन अ० इसके उत्तराधिकारी थे कि वे सत्य की रक्षा के लिए असत्य के प्रत्येक प्रहार का मुकाबिला करें। और इस मार्ग में हर प्रकार का बलिदान प्रस्तुत करके ईश्वरीय आदेशों की रक्षा करते रहें और किसी स्थान पर सत्य की पताका झुकने न दें।

9 मुहर्रम को सांय काल शत्रु की सेना ने इब्ने ज़ियाद के आदेशानुसार अक्रमण भी कर दया परन्तु हुसैन अ० ने उस समय भी युद्ध को प्रिय नहीं किया। हुसैन अ० का भाई अब्बास जो सिंह का ह्रदय रखता था उसको हुसैन अ० ही थे जो फ़ुरात के किनारे से अपनी सौगन्ध देकर यह कह कर लौटा लाये थे कि मैं युद्ध में पहल नहीं करूंगा। यह एक मुख्य इस्लामी उद्देश्य की शिक्षा थी और इस उद्देश्य की पूर्ति में अब्बास की तलवार म्यान में तो चली गई, परन्तु शक्ति के वेग में दांतों से अपने होटों को चबा रहे थे, परन्तु समय के इमाम की आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझते थे। अब अब्बास की अभिलाशाओं की पूर्ति का समय आ गया शत्रु ने आक्रमण कर दिया प्रसन्न होकर आते हैं और इमाम हुसैन अ० से कहते हैं। ''भाय्या ! शत्रु की सेना ने आक्रमण कर दिया।'' तात्पर्य यह था कि बस अब तो हम उन से युद्ध कर ही सकते हैं।

हुसैन अ० अपने वीर भाई को यह उत्तर देते हैं, कि शत्रु से एक रात्रि का अवकाश लेलो, जिससे कि हम एक रात्रि और ईश्वर की इबादत (उपासना) में व्यतीत कर लें। कहां तो अब्बास की शत्रु से युद्ध करने की उमंग और कहाँ शत्रु से अवकाश प्राप्त करने की प्रार्थना। मैं अब्बास जैसे व्यक्ति का हुसैन अ० की आज्ञा के पालन पर बाध्य होना हुसैन अ० के इमाम होने का एक प्रमाण समझता हूं। अपितु जिस व्यक्ति की उत्पित्त का उद्देश्य ही यह हो कि वह सत्य की रक्षा के प्रति असत्य से युद्ध करे, उसका इस प्रकार अपनी भावनाओं पर अधिकार रचाना असम्भव था।

भावनाओं का वशीभूत न होना केवल मासूमों (जिन से कोई अपराध एंव गलती न हो) ही की

विशेषता है। परन्तु मुहम्मद साहब के परिवार का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह मासूम न भी हो इसी विशेषता का प्रतीक था। उनकी प्रत्येक गतिविधि ईश्वर की प्रसन्नता के लिए थी। वे भावनाओं का वशीभूत बनकर कोई कार्य न करते थे वरन् प्रत्येक स्थान पर रसूल अल्लाह के आदर्शों पर बाध्य दृष्टिगोचर होते थे। यही रहस्य है कि मासूम की 'ग़ैबत' में हम पर जिहाद वर्जित है।

कर्बला की पाठशाला हमें बता रही है कि 'मासूम' प्रत्येक स्थान से होकर किस प्रकार आगे बढ़ते रहे। कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना हुआ, परन्तु युद्ध न किया। 'हुर' घोड़ा रोकता है, युद्ध नहीं करते नदी के तट से शिविर हटा लेने की बात होती है युद्ध नहीं करते। शत्रु की सेना आक्रमण कर देती है परन्तु युद्ध नहीं करते। वह जो 'मासूम' न हो इन विषभ परिस्थितियों का सामना सहनशीलता के साथ कर ही नहीं सकता। कर्बला के युद्ध में इमाम हुसैन अ० ने इस्लामी शिक्षाओं के जो चिन्ह छोड़े हैं और जो इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित हैं वे मानव जगत के लिए और मुख्य रूप से हमारे लिए प्रलय तक का पथप्रदर्शन करते हैं ईश्वर हमें सौभाग्य प्रदान करे कि हम हुसैनी शिक्षाओं पर चले सकें।

हुसैन अ० को एक रात्रि का अवकाश मिल गया। यह रात्रि शत्रु से मांगकर इस कारण प्राप्त की गई है कि जीवन की अन्तिम रात्रि को हुसैन अ० और उनके साथी अपने जन्मदाता की और उपासना कर लें। इतिहास साक्षी है कि ऐसी उपासना, ईश्वर की इस धरती पर न इसके पूर्व कभी हुई थी और न प्रलय तक संसार इसका कोई उदाहरण प्रस्तुत कर सकेगा।

कर्बला में इमाम हुसैन अ० ने न केवल हमारे लिए अपितु प्रत्येक मनुष्य के कल्याण के लिए अपने चरित्र तथा कार्यवाहियों के जो उच्च आदर्श प्रस्तुत कर दिए हैं वे यदि एक ओर मानव बुद्धि को आश्चर्यचकित कर देने वाले हैं तो दूसरी ओर ऐश्वरीय शिक्षाओं के प्रकाश में हमारे जीवन को ऐश्वरीय इच्छाओं के अनुकूल संवार देने के भी उत्तराधिकारी हैं। काश कि कभी हम उन पर विचार करें और उनसे भी लाभ उठायें।

जीवन की इस अन्तिम रात्रि को हुसैन अ० ने ईश्वरोपासना के अतिरिक्त जो और कार्य किए उन में से एक कार्य यह भी था कि अपने परिवार की स्त्रियों के पर्दे और उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध भी कर दिया। इमाम हुसैन अ० शत्रु की शराफ़त और उनके धर्म को भलीभांति परखे हुए थे। वे जानते थे कि ये ऐसे नीच और कमीने व्यक्ति हैं कि वे अरबों के उन आम नियमों का उल्लंघन करेंगे जिन पर उन को गर्व था और उनके माथे का कलंक बन कर ये नीच व्यक्ति युद्ध के बीच पीछे से शिविर पर आक्रमण कर देंगे। अतः इस विचार को ध्यान में रखते हुए हुसैन अ० ने उसी रात्रि को शिविर के चहु ओर गड्ढ़ा खुदवा कर उसमें आग जला दी जिससे मुकाबला आमने सामने से हो और शत्रु पीछे से प्रहार न कर सके।

क्या हुसैन अ० को यह ज्ञात न था कि उनकी शहादत के पश्चात इन ही शिविर में आग लगा दी जाएगी और उनके परिवार की माननीय स्त्रियां बन्दी बना ली जाएंगी और उनको दर बदर फिराया जाएगा। वस्तुतः आप इसको जानते थे परन्तु उनको पाठ पढ़ाना था कि देखो मनुष्य जब तक जीवित है उसका यह कर्तव्य है कि वह अपने साथ की स्त्रियों के पर्दे तथा उनकी सुरक्षा का पूरा पूरा ध्यान रखे।

इमाम हुसैन अ० की इस मुख्य शिक्षा पर विशेष रूप से उन व्यक्तियों को ध्यान देने की आवश्यकता है जो मुसलमान और ईमान वाले होते हुए भी स्त्रियों के पर्दे के विरोधी हैं, जो इस्लामी शिक्षाओं के विरूद्ध हैं।

इतिहास के पृष्ठ 10 मोहर्रम की इस रात्रि की घटनाओं में से इमाम हुसैन की एक और कार्यवाही प्रस्तुत करते हैं जो अद्वितीय है। वह व्यक्ति जिसका मुक़ाबला किसी शत्रु से हो वह अपने सहयोगियों की संख्या में वृद्धि चाहता है, परन्तु हुसैन अ० इसके विरूद्ध अपने सहयोगियों को यह आज्ञा दे रहे थे कि वे उनका साथ छोड़कर जहां मन चाहे चले जाएं।

विचार कीजिए कि हुसैन के विरोध में शत्रु की जो सेना थी उसकी संख्या कम से कम तीस हज़ार थी और हुसैन के सहयोगियों की संख्या मुश्किल से सौ सवा सौ थी जिनमें बालक भी थे, अधेड़ भी थे और वृद्ध भी थे। होना तो यह चाहिए था कि आप अपने साथियों में से प्रत्येक की उपस्थिति को ही बहुत जानते और किसी को भी अपने से अलग न करते परन्तु आपने समस्त सहयोगियों को एकत्र किया, उनमें बनी हाशिम के गौत्र वाले भी थे और इष्ट मित्र भी थे। आपने उनसे कहा

कि मैं तुम सब को अपनी बैअत से मुक्त करता हूं, रात्रि के अन्धकार में जिधर चाहो चले जाओ, मुझे तुम्हारा जीवन प्रिय है, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा भी मेरे साथ बध कर डाला जाये। मैं अकेला ही इस आपत्ति पर विजय प्राप्त करने के लिए काफी हूं।

हुसैन अ० के साथ कौन व्यक्ति थे? ये उस समय के इस्लामी जगत के संकलित (चयनित) और हुसैन अ० जैसे व्यक्ति के चुने हुए ईमानदार व्यक्ति थे, जिनके सम्बन्ध में आपने अपने उस समय के भाषण में कहा था कि ''मुझको ज्ञात नहीं कि किसी को ऐसे मित्र और सहायक मिले हों, जैसे तुम लोग हो।'' ये शब्द किसी और व्यक्ति के मुख से नहीं उच्चारित हुए, ये समय के इमाम के मुख से निकले हुए शब्द हैं जो इस बात का प्रमाण है। ये लोग इन्हीं विशेषताओं के प्रतीक थे यह एक तथ्य है कि हुसैन अ० के नाना, इस्लाम कै पैग़म्बर, पिता हज़रत अली अ० तथा बड़े भाई इमाम हसन अ० की एक समय में इन सभी विशेषताओं के वाहक इस संख्या में ईमान वाले और उच्च चरित्र के वाहक (चरित्रधारी) न मिल सके थे।

सन् 60 हिजरी में इस्लाम पर वह समय पड़ गया था कि अब ईमान वालों के समक्ष अपने जीवन से अधिक स्वयं इस्लाम के जीवन और मृत्यु का प्रश्न उपस्थित था, जब उन्हें हुसैन अ० जैसा इस्लाम रक्षक मिल गया जो अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिए मैदान मे आगया था, तो इस अवसर को उन्होंने अपने लिए स्वर्ण अवसर समझा और इस्लाम की रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान देने पर तत्पर हो गए।

'बनी हाशिम' अर्थात 'अबू तालिब' के वंशज का तो जन्म ही इस कारण हुआ था, उनके शरीर के कण कण में इस्लाम की रक्षा के उत्साहमय सागर आरम्भ से ही हिलोरें ले रहा था। उनके समक्ष अबू तालिब का वह दुखमय जीवन था जो उन्होंने मुहम्मद स० साहब तथा उनके संदेशों की रक्षा के सम्बन्ध में व्यतीत किया था। उनको स्मरण थे अबू तालिब के सुपुत्र जाफ़र–ए–तय्यार तथा हज़रत अली अ० के वे महान बलिदान जो वे इस्लाम की रक्षा के सम्बन्ध में यथा सम्भव देते रहे और ईश्वर के इसी संदेश की रक्षाा में शहीद होकर वे अमर हुए। अतः हज़रत 'अब्बास' आत्मज हज़रत 'अली' ने तो वही कहा जो उन्हें कहना चाहिए था। परन्तु धर्म तथा अधर्म के इस भीषण युद्ध के अवसर पर इस्लाम के रक्षकों का इस मात्रा (संख्या) में एकत्र हो जाना एक ऐश्वरीय कार्य था जो वास्तव में रसूल के कुटुम्बियों (परिजनों) के उन मौन प्रचार का परिणाम था जो वे पचास वर्ष तक धर्म के मार्ग में बलि चढ़ाकर करते रहे। जब समय आया तो ज्ञात हुआ कि उन पवित्र व्यक्तियों ने जो कि ईश्वर की ओर से इस संदेश के प्रसार और उसकी रक्षा पर नियुक्त किए गए थे कितने व्यक्तियों की नाड़ियों में ईमान की लहर का संचार कर दिया था। अब देख लीजिए कि हुसैन अ० के सहयोगियों में से एक एक रक्षक किन शब्दों में अपने ईमानी वेग का प्रदर्शन कर रहा था और हुसैन अ० के वापस लौटाए हुए जीवन को उनके चरणों पर न्योछावर कर देने की अभिलाशा प्रकट कर रहा था।

कोई कहता है कि ऐ रसूल के सुपुत्र! हम आपको शत्रुओं में छोड़ दें, आप के नाना को प्रलय के दिन क्या मुख दिखलाएंगे? कोई कहता है कि हम आप के पश्चात जीवित रहकर क्या करेंगे, हम किसी को मुख दिखाने के योग्य भी न होंगे! कोई कहता कि मेरे स्वामी यह तो शरीर से केवल एक बार ही सिर कट रहा है, आप की रक्षा करते हुए यदि हमको सौ बार भी मृत्यु आए और ईश्वर हमें पुनः जीवन प्रदान करे तो अन्तिम बार भी हम अपना जीवन आप ही के चरणों में अर्पित करेंगे, परन्तु आपका साथ नहीं छोड़ेंगे।

इमाम हुसैन अ० अपने साथियों को भलीभांति पहचानते थे, उन्हें तो संसार के समक्ष अपने उन संकलित व्यक्तियों के ईमान के स्तर को स्पष्ट कर देना था, कि देखो ये वे लोग हैं जो इस्लाम के सच्चे पथगामी हैं 'मेरे साथ किसी सांसारिक वैभव की लालसा में नहीं आए थे अपितु वे स्वंय इस अवसर पर अपने ईमानी कर्तव्य को समझ रहे थे कि ईश्वर के आदेशों की सुरक्षा के सम्बन्ध में वे भी मेरे साथ ईश्वर के मार्ग में धर्म युद्ध करने वाले इन व्यक्तियों ने 10 मोहर्रम की रात्रि को जो कुछ कहा था वह दस मोहर्रम के दिन कर दिखाया।'

वह दृष्य जब शत्रु की टिड्डी दल सेना ने अकस्मात आक्रमण कर दिया, और यह चाहा कि इन मुट्ठी भर व्यक्तियों को घोड़ों की टापों से पीस कर रख दें, उस अवसर पर इन साहसी सैनिकों ने जो कार्य किए वह उनके ईमान तथा दृढ संकल्प का ऐसा आदर्श था जो

मानव बुद्धि को आश्चर्य चकित कर देने वाला है।

इमाम हुसैन अ० के सहयोगियों की यह अभिलाषा थी कि उनके जीवन में हुसैन अ० तथा उनके परिवार के किसी सदस्य पर कोई आंच न आने पाए। अब देखिए कि उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने इस ध्येय को ध्यान में रखते हुए तीन दिन की भूख और प्यास में जो कार्य करके दिखा दिया, हम उसे सोच भी नहीं सकते हैं! विचार कीजिए कि अकस्मात पांच हज़ार घोड़े सवारों का आक्रमण और उसका मुक़ाबला, हमारे प्राण न्योछावर हों इस्लाम के उन रक्षकों पर जिन्होंने शत्रु के इस आक्रमण का इस प्रकार मुक़ाबला किया कि धरती पर घुटने टेक दिए और अपनी कटारों की नोक पर घोड़ों को रोक लिया और मुक़ाबला आरम्भ कर दिया और ऐसा युद्ध हुआ कि परिणाम में शत्रुओं को परास्त होना पड़ा। ध्यान दीजिए कि इस युद्ध के समय में कैसी परिस्थिति रही होंगी! क्या केवल रक्षक ही युद्ध करते रहे होंगे और 'बनी हाशिम' चुप चाप खड़े होंगे? जी नहीं, यह बुद्धि के विरूद्ध है। वास्तव में सहयोगियों तथा बनी हाशिम गोत्र का प्रत्येक व्यक्ति उस समय प्रतिरक्षा में लवलीन होगा। रेत के गर्दे में कोई किसी को देख न सकता होगा और यह युद्ध दस पांच मिनट तक न रहा होगा अपितु दो घण्टा जमकर मुक़ाबला हुआ होगा। इस कारण कि शत्रु की सेना पांच हज़ार थी और इनलड़ने वालों की संख्या अधिकाधिक सौ, सवा सौ! इसी से अनुभव (अनुमान) किया जा सकता है कि शत्रु की इतनी बड़ी सेना को पराजित करने में इमाम हुसैन अ० के सहयोगियों को कितने समय तक युद्ध करना पड़ा होगा।

आक्रमणकारी सेना पराजित तो हो गयी ओर निस्सन्देह उसको अधिक जानी क्षति भी उठानी पड़ी होगी, परन्तु वहां संख्या इतनी अधिक थी कि हज़ारों की कमी का कोई प्रभाव न पड़ सकता था, यहां संख्या इतनी कम थी कि एक व्यक्ति की कमी का भी अनुभव किया जा सकता था। जबकि धूल छटने के बाद रणक्षेत्र में पचास रक्षकों की लाशें तड़पती हुई मिलीं। इमाम हुसैन अ० ने प्रत्येक के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और यही वह अवसर था कि आप के मुख से यह शब्द निकले थे कि मेरे सहयोगियों की अधिक संख्या समाप्त हो गई।

ईश्वर के मार्ग में लड़कर मरने वाले इन शहीदों ने अपना बलिदान देकर शत्रु को यह समझा दिया कि इन के जीवन में वह अपने ध्येय में सफ़ल नहीं हो सकता, और इसी कारण इस युद्ध के बाद 10 मुहर्रम की संध्या तक फिर शत्रु का साहस न हुआ कि वह इस प्रकार आक्रमण कर सके। अब यह युद्ध एक एक व्यक्ति से होता रहा। हां ये कायर और कमीने व्यक्ति जब एक एक बालक का भी मुक़ाबला न कर पाते थे तो उसको घेर कर उसका बध कर डालते थे।

प्रकुति ने मनुष्य को जो विशेषताऐं प्रदान की हैं उनमें एक विशेषता दृढ़ संकल्प भी है और इसके उच्चतर स्तर का अनुभव (अनुमान) हमें केवल हुसैन के सहयोगियों की कार्यकुशलताओं से ही हो सकता है। उनकी यह अभिलाषा थी कि उनके स्वामी इमाम हुसैन अ० और बनी हाशिम गौत्र वाले उनके जीवन में सुरक्षित रहें। इस अकस्मात आक्रमण में हमारी बुद्धि काम नहीं करती कि किस प्रकार ये सैनिक इस दशा में कि धूल उड़ाने के कारण एक दूसरे को दिखाई भी न दे सकता था, शत्रु की इस भारी संख्या का मुक़ाबिला भी करते रहे और अपने स्वामी तथा उनके कुटुम्बियों की रक्षा भी करते रहे और अपने ध्येय की पूर्ति में सफ़ल भी हो गये। इतिहास हमें नहीं बताता कि इस युद्ध के अवसर पर बनी हाशिम गौत्र के किसी सदस्य को भी हानि पंहुची हो। बस यह हुसैन अ० के सहयोगियों के इसी दृढ़ संकल्प का चमत्कार था कि वे अपने इस महान ध्येय की पूर्ति में सफ़लता प्राप्त कर ले गये।

देखिए विश्व की प्रणाली बलिदान पर ही आधारित है। और प्रकृति का विधान यह है कि प्रत्येक नीच अपने से उच्च के लिए बलिदान प्रस्तुत करता रहे। प्रत्यक्ष रूप से तो उसका विनाश होगा, परन्तु अपने से उच्च का अंश बनकर उच्चता की ओर अग्रसर होता रहेगा।

मिट्टी अपने से उच्च के लिए जब बलिदान देती है तब ही वनस्पति का जन्म होता है। देखने में तो मिट्टी का विनाश हुआ, परन्तु उसने वनस्पति का अंश बन कर एक ओर तो उस ध्येय की पूर्ति की जिस के लिए उसका जन्म हुआ था दूसरी ओर प्रगति के एक स्तर से आगे बढ़ गई। इस प्रकार वनस्पति ने जन्तुओं का आहार बन कर अपनी बलि दी और अपने से उच्च का अंश बन कर उच्चता के शिखर पर पंहुची। अब मनुष्य की बारी आई यह शिरोमणि था।

चूंकि उससे मिट्टी, वनस्पति तथा जीव जन्तु सब ही नीच थे अतः इन सभी वस्तुओं ने उसके लिए अपनी बलि चढ़ाई और मनुष्य को इस प्रकार यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह इन सभी वस्तुओं का प्रयोग करे।

अब यह विचारणीय है कि जो वस्तुएं मनुष्य से नीच थीं वे तो प्रगति की ओर अग्रसर होती रहीं परन्तु मनुष्य जो इनमें से प्रत्येक वस्तु से श्रेष्ठ था क्या उसके लिए प्रगति का कोई स्तर था ही नहीं? यदि ऐसा होता तो वह कदापि शिरोमणि कहे जाने का भागी न होता। वास्तव में उसके जन्म का भी कोई उद्देश्य है और उसके लिए कोई उच्चतर स्थान भी है।

ईश्वरीय शिक्षाओं के प्रकाश में मनुष्य के जन्म का कारण आज़माइश (परीक्षा) बताया गया है। अतः जो दुःख के जिस स्तर पर पीड़ित होगा और उस परीक्षा में जिस हद तक सफ़लता प्राप्त करेगा उसको उतना ही उच्च स्थान प्राप्त होगा। समस्त ईश्वरीय दूत तथा महापुरूष कठिन परीक्षाओं से आगे बढ़ते रहे और जिसने जैसी परीक्षा दी वैसा ही उच्च स्थान उसको प्राप्त हुआ।

हज़रत इब्राहीम अ० से पूर्व परीक्षा केवल नबियों (ईश्वर दूतों) से ही ली जाती रही, परन्तु इब्राहीम का स्तर उच्च था अतः उनकी परीक्षा का क्रम उन के साथ–साथ उनके पुत्रों तक पंहुचा, और ईश्वर की इच्छा के लिए उनको अपने प्रिय पुत्र इस्माईल अ० का बलिदान देने के लिए तत्पर होना पड़ा और जब आप ने अपना स्वप्न (जो उन्हें ईश्वर की ओर से निरन्तर दिखाया जा रहा था कि अपने पूत्र इस्माईल की बलि दे रहे हैं सत्य कर दिखाया तो नूबूवत के साथ ईश्वर की ओर से इमामत (जन नेत्रत्व) के स्तर पर भी नियुक्त कर दिये गये। न केवल हमारा अपितु इस्लाम के सभी सम्प्रदायों का यह विश्वास है कि हमारे नबी और पैग़म्बर मोहम्मद स० साहब सभी नबियों से सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः उनकी परीक्षा भी उच्चतर होनी चाहिए और उनका बलिदान स्थान (स्तर) हज़रत इब्राहीम अ० से आगे दृष्टगोचर होना अनिवार्य है।

समस्त मुसलमानों के लिए यह विचारणीय है कि मोहम्मद स० साहब के जीवन में उनके पुत्रों के किसी बलिदान का उदाहरण उपस्थित नहीं, ऐसी परिस्थिति में हज़रत इब्राहीम के मुक़ाबिले में हमारे पैग़म्बर का महत्व कैसे सिद्ध किया जा सकता है। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कर्बला में इमाम हुसैन अ० ने जो महान बलिदान प्रस्तुत किये, वे वास्तव में मोहम्मद सा० साहब के बलिदान थे। इब्राहीम अ० ने एक इस्माईल को प्रस्तुत किया, तो हुसैन ने अट्ठारह इस्माईल प्रस्तुत किये और इस प्रकार यह सिद्ध कर दिया कि मेरे नाना अन्य पैग़म्बरों से उच्च थे। हुसैन अ० ने जो परीक्षा दी और ईश्वर के सन्देशों की सुरक्षा के हेतु जो महान बलिदान प्रस्तुत कर दिये वे बलिदान आदि के अन्य पैग़म्बरों के कुल बलिदान से उच्चतर थे।

इस्लाम के रसूल ने संसार को जो सन्देश पहुँचाया और जो शिक्षा दी थी उनको मुसलमानों का बहुदल मोहम्मद स० साहब की मृत्यु के केवल 50 वर्ष के भीतर भुला चुका था। और अब वह समय आ गया था कि इस्लाम की शिक्षाओं पर इतने पर्दे पड़ चुके थे कि वास्तविक इस्लाम को पहचानना सम्भव ही न रहा था। इमाम हुसैन अ० को इस्लाम तथा इस्लामी शिक्षाओं को एक नया जीवन प्रदान करना था, और वह भी इस प्रकार कि प्रलय तक धर्म तथा अधर्म के मध्य अन्तर शेष रह सकें। हुसैन अ० ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर के धर्म तथा अधर्म के मध्य अपने रक्त से एक ऐसी रेखा बना दी कि अब कभी कोई व्यक्ति पथभ्रष्ट नहीं हो सकता यदि वह सत्य की खोज में हो।

इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार मनुष्य के केवल दो ही कर्तव्य हैं। एक ईश्वर के अधिकार को पूरा करना अर्थात इबादत (प्रार्थना / उपासना) करना, दूसरे मानव अधिकार का पूरा करना। अब देखिए कि कर्बला में 10 मोहर्रम के दिन इमाम हुसैन अ० ने इन दोनों कर्तव्यों का पालन किस प्रकार किया और परिस्थिति जैसे जैसे कठिन होती गयी आपकी रचनात्मक शक्ति में किस प्रकार वृद्धि होती रही।

ईश्वर के अधिकार में उच्चतर कर्तव्य 'नमाज़' है। प्रतिदिन एक सहयोगी 'अज़ान' देता था। परन्तु 10 मोहर्रम को प्रातः काल को आपने कहा कि अली अकबर आज तुम अज़ान दो। इसके पश्चात परिस्थिति और कठिन आई और ज़ुहर (तीसरे पहर) की 'नमाज़' का समय आया। यह वह समय था कि आपके सहयोगियों की संख्या में भारी कमी आ चुकी थी और वे अमर हो चुके थे। अब केवल थोड़े से रक्षक और बनी हाशिम शेष थे। शत्रु ने नमाज़ के लिए युद्ध विराम करने से इन्कार कर दिया। नमाज़ वह मुख्य कर्तव्य है कि आप ने दो सहयोगियों को आदेश दिया

कि तुम आगे खड़े हो जाओ। ये जीवन न्योछावर करने वाले अपने इमाम के आगे सीना तान कर खड़े हो गये और शत्रुओं के वाणों को अपने वक्ष पर रोकना आरम्भ कर दिया। और दुखियारे हुसैन अ० ने इस प्रकार नमाज़ के कर्तव्य का पालन किया।

इस स्थान पर भी हुसैन अ० के सहयोगियों के दृढ़ संकल्प का वह चमत्कार भी प्रदर्शित हुआ जिससे उनके ईमान की दृढ़ता तथा चरित्र का अनुभव (अनुमान) किया जा सकता है। शत्रु की ओर से वाणों की वर्षा इस अधिक्ता से हो रही थी कि इतने समय में जब कि इमाम हुसैन अ० ने नमाज़ पढ़ी इन रक्षकों का शरीर वाणों से छलनी हो चुका था, परन्तु यह उनके दृढ़ संकल्प का चमत्कार था कि इस दशा में भी वे अपने स्थान से हटे नहीं। जैसे ही इमाम ने नमाज़ समाप्त की एक रक्षक ने आपसे केवल इतना पूछा कि स्वामी क्या मैं अपने कर्तव्य पालन में सफल हुआ? आपने उसे आशीर्वाद देने के बाद कहा निःसन्देह तुमने अपने कर्तव्य का पालन सफलता पूर्वक किया। यह सन्तोष हो जाने के बाद वह धरती पर गिर पड़ा और उसकी अत्मा स्वर्ग की ओर सिधार गई।

इमाम हुसैन ने सहयोगियों को इस्लाम की रक्षा में अमरत्व प्राप्त कर लेने की इतनी प्रबल इच्छा थी कि वे अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं कर रहे थे, क्या यह सम्भव न था कि ये रक्षक वाणों को अपनी ढ़ालों पर रोकते रहते? परन्तु उन्होंने नहीं किया। वे अपने सीने तान कर खड़े रहे और हर उस बाण को अपने वक्ष पर रोकते रहे जिससे शत्रु इमाम हुसैन अ० पर प्रहार कर रहे थे और इस प्रकार वे इस्लाम की रक्षा का वह आदर्श संसार के समक्ष छोड़ गये जिसका उदाहरण प्रलय तक सम्भव नहीं। हमारे प्राण न्योछावर हों ईश्वर के मार्ग में लड़ने वाले उन रक्षकों पर। इसके पश्चात वह समय आ गया कि:—

न लश्करे, न सिपाहे, न कसररतुन्नासे।
न क़ासिमे, न अली अकबरे, न अब्बासे।।

अब हुसैन अ० अकले हैं, सिर से पैर तक घावों से चूर हो चुके हैं, शरीर का समस्त रूधिर इस्लाम की रक्षा पर व्यय हो चुका है। घोड़े पर रूकना सम्भव नहीं रहा। यह किस प्रकार कहूँ कि आप घोड़े से धरती पर कैसे गिरे, यह 'अस्र की नमाज़ का समय था। आपने जन्मदाता के सजदे में शीश झुका दिया। हुसैन अ० की अस्र की नमाज़ और यह अन्तिम सजदा ईश्वर की दृष्टि में इतना उच्च था कि ईश्वर ने इस सायंकाल की शपथ 'कुर्आन में पहले ही खाई है और उसकी महानता का प्रदर्शन किया हैं। हुसैन अ० का शीश सजदे से उठा तो परन्तु अब वह भाले की नोक पर सूरा—ए—कह्फ़ का पाठन कर रहा था।'

इमाम हुसैन अ० को कर्बला में इस्लाम की शिक्षाओं पर अपनी कार्य वाहियों तथा चरित्र से इतना गहरा प्रकाश डाल देना था कि संसार उसे फिर भुला ही न सके। ईश्वर के अधिकार उसके कर्तव्य का पालन तो आपने इस प्रकार किया कि कोई मनुष्य उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। ईश्वर के बन्दों (संसारियों) से सम्बंधित कर्तव्य पालन के आपने ऐसे आदर्श प्रस्तुत कर दिये कि इतिहास के पृष्ठ उन्हें अपने आंचल में सुरक्षित किए हुए हैं।

वह समय जब आप अंतिम विदा लेने शिविर के द्वार पर पधारे और प्रत्येक को सलाम किया तो जहां यह कहा कि ए 'ज़ैनब' व उम्मे कुलसूम तुम पर सलाम, ए 'उम्मे लैला' और 'रबाब' तुम पर सलाम और ऐ 'सकीना', 'रूकय्या' तुम पर सलाम——वहीं यह भी कहा कि ऐ मेरी माता की कनीज़ (दासी) 'फ़िज़्ज़ा' तुम पर भी सलाम। यह था मानव जगत के लिए अपने कर्तव्य का पालन।

मानव जगत से सम्बधित शहीदों की लाशों को दफ़न करने का भी एक कर्तव्य था। परन्तु हुसैनअ० को उस मरूस्थल पर इसका अवसर ही कहां था कि वे किसी शहीद को गाड़ सकते, परन्तु दुखियारे हुसैनअ० ने अपने दूध पीते बालक 'अली असग़र' की लाश को दफ़न कर के इस कर्तव्य पालन को भी सम्पूर्ण कर दिया।

यह था मनुष्य के जन्म का कारण और उसकी प्रगति का अन्तिम शिखर जिसको हुसैन अ० ने संसार के समक्ष प्रगति के अन्तिम केन्द्र तक पंहुचा कर दिखा दिया।

कर्बला के बलिदान का क्रम यहीं पर समाप्त नहीं हो जाता, यह तो 10 मोहर्रम को प्रातः काल से सायंकाल तक का क्रम था। दूसरा क्रम 10 मोहर्रम के सायंकाल से आरम्भ हो कर एक वर्ष तक जारी रहा। अब कर्बला से कूफ़ा और कूफ़ा से सीरिया की मंजिल थी और इस मार्ग की कठिनाइयां और दुखः कूफ़े में मुहम्मद साहब के परिवार की आदरर्णीय स्त्रियों का प्रदर्शन और 'इब्ने ज़ियाद के दरबार में उपस्थिति और

कूफ़ा से सीरिया तक की प्राण घातक यात्रा और यज़ीद के दरबार की प्राण हरण करने वाली नीच बातें, फिर एक वर्ष तक उस कारागार की कठिनाईयों का सहन करना जिस में दिन की धूप और रात की ओस में रसूल के परिवार वालों को जीवन के यह दिन व्यतीत करना पड़े।'

मुहम्मद साहब स० के कुटुम्बियों के बलिदान का यह क्रम कर्बला पर ही समाप्त नहीं हो जाता, सन् 61 हिजरी के पश्चात जो काम आरम्भ हुआ उसमें बनीउमइय्या तथा बनी अब्बास के गौत्र वालों के द्वारा लगभग दो सौ वर्ष तक इस्लाम का वास्तविक पदाधिकारी विभिन्न प्रकार की विपत्तियों का निशाना बनता रहा और परिणाम स्वरूप विष देकर उसके जीवन का दीप बुझाया जाता रहा, परन्तु इतिहास के पृष्ठ साक्षी हैं कि प्रत्येक मासूम अपने अपने समय में ईश्वर के शत्रुओं की इन कोशिश को सफ़ल नहीं होने दिया कि वे इस्लाम की शिक्षाओं का सर्वनाश कर सकें।

प्रकृति की दृष्टि में मोहम्मद स० साहब के पश्चात केवल 12 व्यक्ति ही ऐसे थे जो ईश्वर के आदेशों की रक्षा और उसकी ओर से कार्य करने के योग्य थे। उनमें से जब दो तलवार से और नौ विष के द्वारा इस्लाम के शत्रुओं के हाथों हताहत हो चुके तो उसने अपने अन्तिम कार्यकर्ता को संसार की दृष्टि से छुपा दिया इस कारण कि ईश्वर की ओर से उसके सन्देशक के बिना यह संसार शेष नहीं रह सकता।

इसके पश्चात इस्लाम के शत्रु उन व्यक्तियों की ओर मुड़े जो वास्तविक इस्लाम तथा उसकी शिक्षाओं पर चल रहे थे, यह संकट का वह समय था जब हमारे पूर्वजों पर अत्याचार होते रहे। परिस्थिति ऐसी थी कि मोहम्मद स० साहब के वंश के प्रत्येक व्यक्ति का चुन चुन कर वध किया जाता रहा कि संसार से उनके वंश का ही विनाश हो जाये। जब किसी भवन का निर्माण होता था उसका आधार रसूल की संतान के रक्त पर ही निर्धारित होता था, और उनको दीवारों में जीवित चुन दिया जाता था। आज भी बग़दाद की दीवार हमारे पूर्वजों की हड्डियों की अमानत दार और उन अत्याचारी राजाओं के अत्याचार की स्मृति है।,

इन्हीं अत्याचारों के फलस्वरूप ईश्वर ने इन अत्याचारी राज्यों का विनाश कर दिया। जब राज्यों का सर्वनाश हो गया तो तलवार और भाले के स्थान पर मुख से तथा कलम के द्वारा आक्रमण का काम आरम्भ हुआ जो आज तक चल रहा है जिसके प्रतिरक्षा के हम उत्तरदायी हैं।

जिस जाति तथा राष्ट्र के समक्ष कर्बला तथा कर्बला के पश्चात के महान बलिदान के आदर्श उपस्थित हों, न तो कभी उसकी भावनाए मर सकती हैं और न वह आक्रमणयता में पड़ सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उसके समक्ष इतिहास के ये रक्तमय पृष्ठ और उसके पूर्वजों तथा पथ प्रर्दशकों के बलिदान की बराबर चर्चा होती रहे। इस ध्येय की पूर्ति में हम मजलिस करते हैं और इमाम हुसैन अ० के दुःख का स्मरण कर उनकी विपत्तियों पर आश्रुपात करना अनिवार्य समझते हैं।

कर्बला की शिक्षाएं

(1) इस जीवन को नाशमय तथा प्रलोक के जीवन को अनन्त समझो।

(2) मानवता के उच्च तत्वों की रक्षा अपने जीवन का उद्देश्य बनाओ।

(3) परस्वार्थ को निज स्वार्थ से सदा उच्च रखो।

(4) सत्य तथा न्याय के मार्ग में प्रत्येक भेंट के लिए कटिबद्ध रहो।

(5) असत्य की सहायता करके अपने को कलंकित न करो।

(6) असत्य की सांसारिक शक्तियों से कदापि भयभीत न हो।

(7) शान्ति रक्षा के लिए अन्तिम क्षण तक यथाशक्ति प्रयत्न करते रहो।

(8) जब तक असत्य से संघर्ष अनिवार्य न हो जाये अपना शिक्षण कार्य शन्तिपूर्वक करते रहो।

(9) इतनी सहनशीलता उत्पन्न करो कि अत्याचारी अत्याचार करते करते थक जाए परन्तु तुम अपने सिद्धान्त पर पर्वत समान अटल रहो।

(10) केवल परमात्मा पर विश्वास ही मनुष्य को सत्य–रक्षा में बड़ी से बड़ी भेंठ के लिए कटिबद्ध कर सकता है।

(11) विश्वास रखो कि अन्तिम विजय उन्हीं के लिए है जो सत्य पर जमे रहते हैं।

(12) परस्पर एक दूसरे को सत्य पर जमे रहने तथा आपत्ति में धैर्यपूर्वक रहने का उपदेश देते रहो।

(13) जब राक्षसी शक्तियों से संघर्ष अनिवार्य हो जाय तो तुम सीसा पिलाई हुई दीवार बन जाओ।

(14) स्मरण रखो ''आदरणीय मृत्यु अनादरित (आदररहित) जीवन से अच्छी है।'' ✦✦✦

(इमामिया मिशन का प्रकाशन नं0 582
मोहर्रम 1689हि0 / मार्च1969)